International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
International Open Access Journal
ISSN No: 2456 - 6470 | www.ijtsrd.com | Volume - 2 | Issue – 1

आधुनिक युग और कामायनी की प्रासंगिकता

Devendra Kumar Gupta
Assistant Professor, Hindi, Government College, Dholpur, Rajasthan, India

सार
जयशंकर प्रसाद छायावाद चतुष्ट्य के प्रमुख कवि हैं । छायावादी काव्यधारा में उनका अग्रगण्य स्थान माना जाता है । इनका जन्म वाराणसी के प्रसिद्ध वैश्य परिवार "सुंघनी साहू " के यहां 1889 ई. में हुआ । बाल्यकाल से ही ये काव्य प्रतिभा के धनी थे, तथा अल्पायु से ही काव्य रचना करने लगे थे। इनकी प्रारंभिक रचनाएं ब्रजभाषा में हैं, परंतु समय के साथ साथ इनकी रचना दृष्टि परिष्कृत एवम परिमार्जित होती गई एवम इसकी परिकल्पना "कामायनी" नामक महाकाव्य के रूप में अपनी पूर्ण गरिमा और सौंदर्य के साथ साकार हुई । कामायनी निश्चय ही छायावाद की सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है । कामायनी पूर्णतः मानव मन एवम दर्शन से परिपूर्ण काव्य है । इसमें प्रमुख पात्रों को मन, बुद्धि एवम हृदय का प्रतीक मानते हुए कवि ने मनुष्य के मानसिक अतर्द्वंद एवम मानवता के समस्त सिद्धांतों का सम्यक निदर्शन किया है । आधुनिक समय में आज जब मनुष्यता अस्तित्व संबंधी संकट से जूझ रही है, तो कामायनी का ये संदेश अत्यंत समीचीन जान पड़ता है –

औरों को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
और सबको सुखी बनाओ

आज इस कोरोना काल में हम सब जिन भयावह परिस्थितियों का सामना कर रहें है, इनमें कामायनी में प्रसाद जी द्वारा प्रतिपादित मानवता एवम समरसता के सिद्धातों को पुनः स्मरण करने की आवश्यकता है, प्रसाद जी के अनुसार –

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान

कामायनी की वास्तविक प्रासंगिकता इन्हीं अर्थों में निहित है । प्रसाद जी की यह रचना वस्तुतः मानवता का मूर्त रुप कही जा सकती है । आज प्रसाद जी के शब्दों में हम यही मंगलकामना कर सकते है कि मानव धर्म एवम समरसता का पालन करते हुए हम सब निरंतर उन्नति को प्राप्त हों –

डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि
पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र
खिंची आयेगी सकल समृद्धि

परिचय

कामायनी हिंदी भाषा का एक महाकाव्य है। इसके रचयिता जयशंकर प्रसाद हैं। यह आधुनिक छायावादी युग का सर्वोत्तम और प्रतिनिधि हिंदी महाकाव्य है। 'प्रसाद'जी की यह अंतिम काव्य रचना 1936 ई. में प्रकाशित हुई, परंतु इसका प्रणयन प्राय: 7-8 वर्ष पूर्व ही प्रारंभ हो गया था। 'चिंता' से प्रारंभ कर 'आनंद' तक 15 सर्गों के इस महाकाव्य में मानव मन की विविध अंतर्वृत्तियों का क्रमिक उन्मीलन इस कौशल से किया गया है कि मानव सृष्टि के आदि से अब तक के जीवन के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास का इतिहास भी स्पष्ट हो जाता है।

कला की दृष्टि से कामायनी, छायावादी काव्यकला का सर्वोत्तम प्रतीक माना जा सकता है। चित्तवृत्तियों का कथानक के पात्र के रूप में अवतरण इस महाकाव्य की अन्यतम विशेषता है। और इस दृष्टि से लज्जा, सौंदर्य, श्रद्धा और इड़ा का मानव रूप में अवतरण हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है। कामायनी प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित है। साथ ही इस पर अरविन्द दर्शन और गांधी दर्शन का भी प्रभाव यत्र तत्र मिल जाता है।[1,2]

मानव के अग्रजन्मा देव निश्चिंत जाति के जीव थे। किसी भी प्रकार की चिंता न होने के कारण वे 'चिर-किशोर-वय' तथा 'नित्यविलासी' देव आत्म-मंगल-उपासना में ही विभोर रहते थे। प्रकृति यह अतिचार सहन न कर सकी और उसने अपना प्रतिशोध लिया। भीषण जलप्लावन के परिणामस्वरूप देवसृष्टि का विनाश हुआ, केवल मनु जीवित बचे। देवसृष्टि के विध्वंस पर जिस मानव जाति का विकास हुआ उसके मूल में थी 'चिंता', जिसके कारण वह जरा और मृत्यु का अनुभव करने को बाध्य हुई। चिंता के अतिरिक्त मनु में दैवी और आसुरी वृत्तियों का भी संघर्ष चल रहा था जिसके कारण उनमें एक ओर आशा, श्रद्धा, लज्जा और इड़ा का आविर्भाव हुआ तो दूसरी ओर कामवासना, ईर्षा और संघर्ष की भी भावना जगी। इन विरोधी वृत्तियों के

निरंतर घात-प्रतिघात से मनु में निर्वेद जगा और श्रद्धा के पथप्रदर्शन से यही निर्वेद क्रमश: दर्शन और रहस्य का ज्ञान प्राप्त कर अंत में आंनद की उपलब्धि का कारण बना। यह चिंता से आनंद तक मानव के मनोवैज्ञानिक विकास का क्रम है। साथ ही मानव के आखेटक रूप में प्रारंभ कर श्रद्धा के प्रभाव से पशुपालन, कृषक जीवन और इड़ा के सहयोग से सामाजिक और औद्योगिक क्रांति के रूप में भौतिक विकास एवं अंत में आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति का उद्योग मानव के सांस्कृतिक विकास के विविध सोपान हैं। इस प्रकार कामायनी मानव जाति के उद्भव और विकास की कहानी है।[3,4]

प्रसाद ने इस काव्य के प्रधान पात्र 'मनु' और कामपुत्री कामायनी 'श्रद्धा' को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में माना है, साथ ही जलप्लावन की घटना को भी एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया है। शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के आठवें अध्याय से जलप्लावन संबंधी उल्लेखों का संकलन कर प्रसाद ने इस काव्य का कथानक निर्मित किया है, साथ ही उपनिषद् और पुराणों में मनु और श्रद्धा का जो रूपक दिया गया है, उन्होंने उसे भी अस्वीकार नहीं किया, वरन् कथानक को ऐसा स्वरूप प्रदान किया जिसमें मनु, श्रद्धा और इड़ा के रूपक की भी संगति भली भाँति बैठ जाए। परंतु सूक्ष्म सृष्टि से देखने पर जान पड़ता है कि इन चरित्रों के रूपक का निर्वाह ही अधिक सुंदर और सुसंयत रूप में हुआ, ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में वे पूर्णत: एकांगी और व्यक्तित्वहीन हो गए हैं।[5,6]

मनु मन के समान ही अस्थिरमति हैं। पहले श्रद्धा की प्रेरणा से वे तपस्वी जीवन त्याग कर प्रेम और प्रणय का मार्ग ग्रहण करते हैं, फिर असुर पुरोहित आकुलि और किलात के बहकावे में आकर हिंसावृत्ति और स्वेच्छाचरण के वशीभूत हो श्रद्धा का सुख-साधन-निवास छोड़ झंझा समीर की भाँति भटकते हुए सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं; श्रद्धा के प्रति मनु के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध काम का अभिशाप सुन हताश हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और इड़ा के संसर्ग से बुद्धि की शरण में जा भौतिक विकास का मार्ग अपनाते हैं। वहाँ भी संयम के अभाव के कारण इड़ा पर अत्याचार कर बैठते हैं और प्रजा से उनका संघर्ष होता है। इस संघर्ष में पराजित और प्रकृति के रुद्र प्रकोप से विक्षुब्ध मनु जीवन से विरक्त हो पलायन कर जाते हैं और अंत में श्रद्धा के पथप्रदर्शन में उसका अनुसरण करते हुए आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करते हैं। इस प्रकार श्रद्धा—आस्तिक्य भाव—तथा इड़ा—बौद्धिक क्षमता—का मनु के मन पर जो प्रभाव पड़ता है उसका सुंदर विश्लेषण इस काव्य में मिलता है।[7,8]

कामायनी १५ सर्ग (अध्यायों) का महाकाव्य है। ये सर्ग निम्नलिखित हैं-

1. चिन्ता 2. आशा 3. श्रद्धा 4. काम 5. वासना 6. लज्जा 7. कर्म 8. ईर्ष्या 9. इड़ा (तर्क, बुद्धि) 10. स्वप्न 11. संघर्ष 12. निर्वेद (त्याग) 13. दर्शन 14. रहस्य 15. आनन्द।

सूत्र:- (१) **चिंता** की **आशा** से **श्रद्धा** ने **काम वासना** को **लज्जित** किया। (२) **कर्म** की **ईर्ष्या** से **बुद्धि/तर्क** ने **स्वप्न** में **संघर्ष** किया। (३) निदरआ (निद्रा)/ मोह माया का **त्याग** कर ईश्वरीय **दर्शन** द्वारा **रहस्य**मय **आनंद** की प्राप्ति होगी।

काव्य रूप की दृष्टि से कामायनी चिंतनप्रधान है, जिसमें कवि ने मानव को एक महान् संदेश दिया है। 'तप नहीं, केवल जीवनसत्य' के रूप में कवि ने मानव जीवन में प्रेम की महत्ता घोषित की है। यह जगत् कल्याणभूमि है, यही श्रद्धा की मूल स्थापना है। इस कल्याणभूमि में प्रेम ही एकमात्र श्रेय और प्रेय है। इसी प्रेम का संदेश देने के लिए कामायनी का अवतार हुआ है। प्रेम मानव और केवल मानव की विभूति है। मानवेतर प्राणी, चाहे वे चिरविलासी देव हों, चाहे देव और प्राण की पूजा में निरत असुर, दैत्य और दानव हों, चाहे पशु हों, प्रेम की कला और महिमा वे नहीं जानते, प्रेम की प्रतिष्ठा केवल मानव ने की है। परंतु इस प्रेम में सामरस्य की आवश्यकता है।[9,10] समरसता के अभाव में यह प्रेम उच्छृंखल प्रणयवासना का रूप ले लेता है। मनु के जीवन में इस सामरस्य के अभाव के कारण ही मानव प्रजा को काम का अभिशाप सहना पड़ रहा है। भेद-भाव, ऊँच-नीच की प्रवृत्ति, आडंबर और दंभ की दुर्भावना सब इसी सामरस्य के अभाव से उत्पन्न होती हैं जिससे जीवन दु:खमय और अभिशापग्रस्त हो जाता है। कामायनी में इसी कारण समरसता का आग्रह है। यह समरसता द्वंद्व भावना में सामंजस्य उपस्थित करती है। संसार में द्वंद्वों का उद्गम शाश्वत तत्व है। फूल के साथ काँटे, भाव के साथ अभाव, सुख के साथ दु:ख और रात्रि के साथ दिन नित्य लगा ही रहता है। मानव इनमें अपनी रुचि के अनुसार एक को चुन लेता है, दूसरे को छोड़ देता है और यही उसके विषाद का कारण है। मानव के लिए दोनों को स्वीकार करना आवश्यक है, किसी एक को छोड़ देने से काम नहीं चलता। यही द्वंद्वों की समन्वय स्थिति ही सामरस्य है। प्रसाद ने हृदय और मस्तिष्क, भक्ति और ज्ञान, तप, संयम और प्रणय, प्रेम, इच्छा, ज्ञान और क्रिया सबके समन्वय पर बल दिया है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार कामायनी मानव चेतना के विकास का महाकाव्य है।[11,12]

कामायनी की प्रतीक रचना के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण संकेत रचना के आरंभ में **रचनाकार जयशंकर प्रसाद** के निम्नलिखित कथन से मिलता है— "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिये मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्त करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"[13,14]

कामायनी के प्रतिकात्मक होने के संदर्भ में डॉ नगेंद्र की व्याख्या सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है।उन्होनें कामायनी को कथारूपक (ऐलिगरी) के अर्थ में रूपक काव्य माना है। डॉ नगेंद्र कामायानी के प्रतीकों की व्याख्या निम्नलिखित पद्धति से करते हैं—

(क) **पात्रों के स्तर पर प्रतीकात्मकता**
मनु - मनोमय कोश में स्थित जीव का प्रतीक
श्रद्धा- उदात्त भावना का प्रतीक
इड़ा - तर्क- बुद्धि की प्रतीक
आकुलि- किलात— आसुरी वृत्तियों के प्रतीक

देव- अबाध इंद्रिय-भोग के प्रतीक
श्रद्धा का पशु- दया, अहिंसा और करुणा का प्रतीक
वृषभ- धर्म का प्रतीक

(ख) **घटनाओं के स्तर पर प्रतीकात्मकता**
जल प्लावन की घटना प्रलय की प्रतीक
कैलाश पर्वत आनंद कोश या समरसता का प्रतीक
सारस्वत प्रदेश- विज्ञानमय कोश का प्रतीक
इसके अतिरिक्त डॉ॰ नामवर सिंह ने भी इसकी व्याख्या की है ।[15,16]

विचार-विमर्श

कामायनी' जयशंकर प्रसाद कृत ऐसा महाकाव्य है जो सदैव मानव जीवन के लिए एक प्रेरणा बन कर रहेगा। कामायनी सदा से मेरी प्रिय पुस्तकों में से एक रही है। इसे मैंने कई बार पढ़ा, मुझे हर बार इसमें नए अर्थ मिले हैं। जीवन के हर दशक में, हर पड़ाव में नए सिरे से पढ़ने पर जीवन के प्रति जीवन का नया दर्शन पता चला है। कामायनी से मेरा परिचय अपने अस्तित्व से परिचय के तुरंत बाद का है, मेरी मां ने मुझे बताया कि उन्होंने मेरा नाम कामायनी से चुना, जहां इड़ा यानि बुद्धि का पर्याय मनीषा आता है। मेरी मां का प्रिय ग्रंथ मुझमें तो उत्सुकता जगाता ही। मैंने इसे किशोरावस्था में पढ़ा। फिर हिंदी में एमए करते हुए तो सिलेबस का महत्वपूर्ण हिस्सा रही कामायनी।

कामायनी की कथा मूलत: एक कल्पना, एक फैण्टसी है। जिसमें प्रसाद जी ने अपने समय के सामाजिक परिवेश, जीवन मूल्यों, सामयिकता का विश्लेषित सम्मिश्रण कर इसे एक अमर ग्रन्थ बना दिया। यही कारण है कि इसके पात्र - मनु, श्रद्धा और इड़ा - मानव, प्रेम व बुद्धि के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के माधयम से कामायनी अमर हो गई। क्योंकि इन प्रतीकों के माध्यम से जीवन का जो विश्लेषण कामायनी में प्रसाद जी ने प्रस्तुत किया, वह आज भी उतना ही सामयिक है, जितना कि प्रसाद जी के समय में रहा होगा। देवों का घमण्ड, स्वयं सृष्टिकर्ता के रूप में स्वयं सृष्टि ने ही उनके उच्छृंखल व्यवहार को लेकर तीनों लोकों में प्रलय कर कैसे तोड़ा यह जहां पौराणिक ऐतिहासिक बात है वहीं एक सबक है मनुष्यत्व के प्रति...धरती के प्रति उनके मनमाने व्यवहार के प्रति।[17,18]

कामायनी का प्रथम प्रकाशन लगभग 58 वर्ष पूर्व हुआ था तब से आज तक लेकर कामायनी हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय तथा विवादित और चर्चित पुस्तक रही है। हर विश्वविद्यालय के हिन्दी के पाठ्यक्रम में शामिल रही है। स्कूलों की 10वीं, 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं के हिन्दी के कोर्स में भी में भी कामायनी के अंश शामिल रहे हैं। अपनी लोकप्रियता, आलोचना तथा प्रशंसा को समभाव से स्वीकार कर 'कामायनी' आज भी अपने स्थान पर अटल है। इसकी प्रासंगिकता सुधि पाठकों तथा आलोचकों के लिए आज भी उतनी ही है जितनी हमेशा रही है। संक्षेप में, कामायनी एक ऐसा महाकाव्य है, जो आज के मानव जीवन को उसके समस्त परिवेश व परिस्थिति के साथ प्रस्तुत करता है।

मुक्तिबोध जी के शब्दों में – " कामायनी में वर्णित सभ्यता – प्रयासों के पीछे प्रसाद जी का अपना जीवनानुभव, अपने युग की वास्तविक परिस्थिति, अपने समय की सामाजिक दशा बोल रही है।" कामायनी में चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, इर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द नामक पन्द्रह सर्ग हैं। हर सर्ग में मनु की यानि मानव की दशा का हृदयस्पर्शी वर्णन विश्लेषण है... जो जीवन के हर पड़ाव, हर पहलू पर प्रकाश डालता चलता है। कामायनी में से मेरे प्रिय पद्यांश प्रस्तुत करने से पूर्व में स्वयं प्रसाद जी की पुस्तक में लिखी भूमिका के कुछ अंशों से पाठकों का परिचय करवाना चाहूँगी, जो कामायनी की कथा के मूल में ले जाएगी - " जलप्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। 'मनवे वै प्रात:' इत्यादि से इस घटना का उल्लेख 'शतपथ ब्राह्मण' के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगणों के उच्छृंखल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नए युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रर्वतक मनु हुए। मनु भारतीय इतिहास के आदिपुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं।"[19,20]

" श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरम्भ करने का प्रयत्न हुआ। किन्तु असुर पुरोहित के मिल जाने से इन्होंने पशुबलि दी। ...इस यज्ञ के बाद मनु में जो पूर्वपरिचित देव प्रवृत्ति जाग उठी, उसने इड़ा के सम्पर्क में आने पर उन्हें श्रद्धा के अतिरिक्त एक दूसरी ओर प्रेरित किया। ... इड़ा के प्रति मनु को अत्यधिक आकर्षण हुआ और श्रद्धा से वे कुछ खिंचे। ऋगवेद में इड़ा का कई जगह उल्लेख मिलता है यह पजापति मनु की पथप्रदर्शिका, मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है।" "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा आदि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मनु अर्थात मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश: श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु (ऋग्वेद 10 – 151 – 4) इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' की कथासृष्टि हुई है। हां ' कामायनी' की कथा श्रृंखला मिलाने के लिये कहीं-कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूं।" -जयशंकर प्रसाद

कामायनी का अंश (चिन्ता सर्ग से) हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छांह एक पुरुष, भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह। नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन। दूर दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसीके हृदय समान नीरवता – सी शिला, चरण से टकराता फिरता पवनमान। तरुण तपस्वी सा वह बैठा, साधन करता सुर- श्मशान नीचे प्रलय सिन्धु लहरों का, होता था सकरुण अवसान। बंधी महाबट से नौका थी सूखे में अब पड़ी रही उतर चला वह जलप्लावन और निकलने लगी मही। निकल रही मर्म वेदना, करुणा विकल कहानी सी वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हंसती सी पहचानी सी। चिन्ता करता हूं मैं

जितनी उस अतीत की, उस सुख की उतनी ही अनंत में बनती जातीं रेखाएं दु:ख की। स्वयं देव थे हम सब, तो फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि। मौन! नाश! विध्वंस! अंधेरा!शून्य बना जो प्रगट अभाव, वही सत्य है, अरी अमरते! तुझको यहाँ कहाँ ठांव। मृत्यु, अरी चिरनिद्रे! तेरा अंक हिमानी सा शीतल, तू अनन्त में लहर बनाती काल – जलधि की – सी हलचल। वाष्प बन उजड़ा जाता था वह भीषण जल संघात, सौर चक्र में आवर्तन था प्रलय निशा का होता प्रात:।[21,22]

परिणाम

कामायनी'आधुनिक हिन्दी साहित्य का अमर महाकाव्य है, जिसमें आधुनिक युग की विशेषताओं और प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है और जो अनेक दृष्टियों से अपने युग के पूर्ववर्ती समस्त भारतीय महाकाव्यों से भिन्न एक निराले स्थान का अधिकारी है। छायावादी काव्यधारा के अंतर्गत जो काव्य लिखे गए, उन सभी में प्रसाद का 'कामायनी' अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा जी ने लिखा है-''प्रसाद जी की कामायनी महाकाव्यों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ती है, क्योंकि वह ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ में मानव विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण भावना की प्रेरणा और समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है। इस प्रकार प्रसाद जी ने 'कामायनी' में स्थूल पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं के भीतर निहित सूक्ष्म और चिरंतन भाव सत्यों की खोज करके उन्हें शाश्वत जीवन मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है और उन्हें ही 'आत्मा की अनुभूति' कहा है।" प्रसाद का यह महाकाव्य पूर्ववर्ती सभी महाकाव्यों से भिन्न भूमिका पर प्रतिष्ठित है[23,24] क्योंकि इसमें स्थूल घटनाओं और पात्रों की नहीं, अपितु सूक्ष्म मनोवृत्तियों और भावनाओं के विकास क्रम की कथा कही गई है। कथा क्रम की दृष्टि से कामायनी की कथा का आधार पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। शतपथ ब्राह्मण की जलप्लावन घटना से लेकर पुराणों में बिखरी हुई सामग्री तक का प्रयोग प्रसाद ने किया है। वस्तुतः प्रसाद जी अत्यंत प्राचीन कथा के द्वारा मानव के विकास की सरणियों का निरूपण करना चाहते थे। प्रसाद ने 'कामायनी' में समस्त कथा सूत्रों को एकत्र करके आदि मानव के विकास की कथा कही है।

'कामायनी' के कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि इतनी बड़ी कथा होते हुए भी प्रसाद जी ने संक्षिप्त एवं सांकेतिक रूप में उसकी विकास सरणियों को स्पष्ट किया है। वन्य जीवन, नागर सभ्यता, यांत्रिक सभ्यता, उससे पलायन और अंत में आध्यात्मिक जीवन के चित्रण द्वारा हमें कथा के विकास की विभिन्न सरणियां प्राप्त होती हैं। इसी कारण कथा एक सुनियोनित रूप से आगे बढ़ती रहती है। कवि ने बताया कि देव-संस्कृति का विकास मानव के लिए अभिप्रेरित नहीं है, और न यह उसका लक्ष्य है। उसका लक्ष्य है समरसता के द्वारा आनंद की प्राप्ति। भावनाओं और दृष्टिकोणों का समन्वय ही समरसता है। नारी-पुरूष, हृदय-बुद्धि, सुख-दुःख, आशा-निराशा आदि सभी दृष्टिकोण से कामायनी का लक्ष्य जीवन में सामंजस्य का प्रयास है। मानव का प्रतीक मनु इस समन्वय दृष्टि से वंचित होने के कारण अनेक कष्ट भोगता है। उसके हृदय पक्ष और बुद्धिपक्ष परस्पर संघर्षरत रहते हैं और यह द्वंद्व तब तक चलता रहता है, जब तक श्रद्धा जीवन में समन्वय नहीं ला देती। प्रसाद जी की धारणा है कि मन से समरसता, सामंजस्य स्थापित करने से ब्राह्य जगत में भी संतुलन स्थापित हो जाएगा। इस संतुलन से ही व्यक्ति अपने मूल तत्व का विकास कर सकता है और यही उसका वास्तविक विकास है।[25,26]

'कामायनी' के कथानक द्वारा कवि ने मानवत्व की प्रतिष्ठा का भी अनुपम प्रयास किया है। मनु के मन में एकांत के कारण जिन मानसिक वृत्तियों का उदय होता हैं, उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मन के रहस्यों का उद्घाटन करता चला जाता है। 'कामायनी' मानवता के उस विकास को लेती है, जिसमें उठती-गिरती मानवता निरंतर गतिमान रहती है। मानव मन का अंत विश्लेषण करते हुए प्रसाद जी ने उसमें अनेक भावनाओं का आरोह-अवरोह दिखलाया है। मानव के जीवन में नारी का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। श्रद्धा मनु में एक नवीन भावना को जन्म देती है। उसकी इच्छा है 'मानवता विजयिनी हो'। प्रसाद जी अंत में मानवता की विजय ही घोषित करते हैं। पूर्ण मानव का चरित्रांकन उसका मुख्य विषय है।[27]

'कामायनी' के कथानक की अन्य मुख्य विशेषता यह है कि इसकी कथा में ऐतिहासिक सत्य का आधार तो लिया ही गया है, उसमें मानवता का मनोवैज्ञानिक इतिहास भी उद्घाटित किया गया है। मनु-श्रद्धा, इड़ा संबंधी प्राचीन कहानियों में जो रूपक तत्व निहित है, उसी के सहारे कामायनी में प्रस्तुत कथा के आवरण में मानव के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विकास की कथा कही गई है और यह रूपक योजना प्रसाद जी की अपनी कल्पना की उपज और उनकी मौलिक देन है। नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-''प्रसाद ने मानव वृत्तियों का निरूपण करने वाले अपने काव्य में दार्शनिकता का आभास अवश्य दिया है पर वह दार्शनिकता काव्य का अंग बनकर आई है और उसकी प्रकृति भावना भूमि पर ही अधिष्ठित है। वह काव्य के वस्तु वर्णन और भावात्मक स्वरूप को किसी प्रकार ठेस नहीं पहुँचाती।"[4] इस प्रकार 'कामायनी' में रूपकत्व संबंधी एक ऐसी विशेषता आ गई है, जो भारतीय या पाश्चात्य किसी भी रूपक कथा में देखने को नहीं मिलती है। 'कामायनी' के कथानक की विशिष्टता पर विचार करते हुए कुछ अन्य तत्वों पर भी हम ध्यान दे तो ज्ञात होता है कि कथासूत्र में क्रम स्थापित करने के लिए प्रसाद ने कल्पना का भी आश्रय लिया है। किन्तु श्रद्धा के संदेश, मनु के आंतरिक द्वंद्व आदि के द्वारा उन्होंने सत्य का प्रतिपादन किया है। कथा का आधार भारतीय दर्शन है।[28,29]

'कामायनी' की कथा के अतिरिक्त इसके चरित्र भी प्रसाद जी ने प्राचीन ग्रंथों से ग्रहण किए हैं। मनु, श्रद्धा, इड़ा का नाम अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। भारतीय विद्वानों ने महाकाव्य में नायक के चरित्र का धीरोदात्त गुण समन्वित होना आवश्यक माना गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि उसे उन नैतिक सामाजिक और धार्मिक आदर्शों का प्रतीक होना चाहिए, जिन्हें तत्कालीन समाज

में मान्यता प्राप्त थी। आधुनिक युग में चरित्रों की मान्यता में भी परिवर्तन हो गया है। आज यह माना जाता है कि चरित्रों को यथार्थ में मानव का चित्र होना चाहिए, आदर्शवादी नहीं। नायक के चरित्र-चित्रण की चली आती हुई परम्परा में प्रायः आदर्श और महानता का जो ग्रहण हुआ है, उसके स्थान पर मनु की चरित्र सृष्टि में प्रसाद ने यथार्थ को अधिक ग्रहण किया है। मनु एक साधारण मानव है, जो जीवन के समस्त संघर्षों को झेलता हुआ अंत में आनंद तक पहुँच जाता है। वह वासना, ईर्ष्या की स्वाभाविक दुर्बलताओं से ग्रसित रहता है, किन्तु आगे बढ़ने की उसकी आकांक्षा नहीं मरती। 'कामायनी' के नायक मनु में धीरोदात्त नायक के लक्षण न होने पर भी काव्योचित ह्रास के क्षेत्र में वह एक नितांत, नवीन कल्पना है। कवि ने उसे मानव गुणों[30,31] और मानवीय दुर्बलताओं से निर्मित किया है। प्राचीन शास्त्रों में महत् चरित्र की ऐसी कोई कल्पना नहीं थी। इस नवीन कल्पना का श्रेय प्रसाद का अत्यंत यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रकट करता है और यह आज के युग के अनुरूप ही है - यही मनु का चरित्र चित्रण संबंधी वैशिष्ट्य है।

इसके साथ ही प्रसाद जी ने श्रद्धा और इड़ा के जो चरित्र प्रस्तुत किए वे यथार्थवादी धरातल पर होते हुए भी मानव जीवन की उच्च सुरूचियों और उच्च भावनाओं के स्वरूप के प्रतीक हैं। यह भी एक महान प्रयास है और यह तत्व महाकाव्य परम्परा को नया आयाम देता है। इसी प्रकार इड़ा भी एक बुद्धिवादी नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुए भी मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं। वह निराश मनु को आश्रय देती है। अंतिम समय तक वह मनु को प्रेरित करती है। इड़ा का अंतिम स्वरूव विनम्र हो गया है। वास्तव में बुद्धिमयी होते हुए भी वह अमानवीय, असहिष्णु तथा निमर्म नहीं है। बुद्धि रूप में वह एक शक्ति है, जिसका मनु उचित प्रयोग नहीं कर सकें। इस प्रकार 'कामायनी' के पात्र केवल ऐतिहासिक अथवा पौराणिक बनकर नहीं रह जाते, वे युगों पूर्व के होकर भी नवीनतम परिस्थितियों में चलते दिखाई देते हैं। इतिहास के अतीत में नवीनता का सृजन एक कुशल कलाकार ही कर सकता है और यही 'कामायनी' का चरित्रगत वैशिष्ट्य है।[32,33]

शैली की दृष्टि से 'कामायनी' हिन्दी में अपने ढंग का निराला महाकाव्य है। उसमें शैली की वह गरिमा, भव्यता और उदात्तता पूर्ण रूप में विद्यमान है, जिसके बिना कोई काव्य 'महाकाव्य' पद का अधिकारी नहीं हो सकता। 'कामायनी' में शैली के विविध तत्वों और पक्षों तथा अभिव्यक्ति के विविध स्वरूपों की पूर्णता है और उन सबके सामंजस्य से ही उसमें शैलीगत और उदात्तता की प्रतिष्ठा हुई हैं। यहाँ हमें भावनाओं की सत्यता, व्यापकता और गहनता मिलती हैं।

'कामायनी' में अनुभूति की सूक्ष्मता और जटिलता की अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यंजना के सभी कौशलों के उपयोग किए गये हैं। हमें इस महाकाव्य में लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता एवं चित्रात्मकता, सुसंगठित अलंकार विधान सुंदर भाषा और सरल शब्द चयन आदि गुण प्राप्त होते हैं। 'कामायनी' का शिल्प किसी परम्परागत पद्धति का अनुसरण नहीं करता। कवि ने अपनी उदात्त कल्पना, प्रांजल अभिव्यक्ति से उसकी संपूर्ण योजना का निर्वाह किया है। काव्य में गीतिमयता का ग्रहण हमें अधिक मिलता है। माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा भावों की लहर उठाती चलती है।[34,35]

कामायनी' में नाटकीय शैली को ग्रहण किया गया है। मनु और श्रद्धा के मन में उठने वाले भाव और विचार मूर्तिमान होकर संवाद रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इसके साथ ही पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन भी कथानक को गतिमान करते हैं। 'कामायनी' की नाटकीयता उसके सौंदर्यवर्धन में सहायक हुई है। कामायनी की स्वच्छंदता अनुपम है।

प्राचीन समय में वस्तु वर्णन महाकाव्य का आवश्यक महत्वपूर्ण अंग था। वर्णनात्मक शैली पर महाकाव्य रचे जाते थे। प्रसाद ने इस बाह्य वस्तु वर्णन को अंतर्मुखी कर दिया है। मानवीय भावनाओं के प्रकाशन में उन्होंने संपूर्ण अवधान केन्द्रित कर दिया। सुख-दुःख, आशा निराशा के अतिरिक्त मन में उठने वाले सभी विचारों का सम्यक प्रकाशन हुआ है। 'कामायनी' अपने मनोवैज्ञानिक निरूपण के कारण अधिक भावात्मक तथा अंतर्मुखी हो गई। वस्तु का स्वरूप न चित्रित करके उसका मानव पर पड़ने वाला प्रभाव चित्रित किया गया हैं। हम कह सकते हैं कि प्रसाद की शैली वर्णन, वर्णन-प्रधान या विषय-प्रधान बहुत कम है, विश्लेषण प्रधान और विषयी प्रधान अधिक है।[36,37]

भाव अभिव्यंजना की सरसता गीतिकाव्य में मिलती है। 'कामायनी' में यह गीतितत्व प्रमुखता से पाया जाता है। वर्णन प्रधान महाकाव्य में इसका अभाव देखा जाता है। प्रसाद ने अपने भावों के अनुरूप ही इस शैली को अपनाया है। गीतात्मक शैली द्वारा महाकाव्य का यह निर्माण कवि का मौलिक प्रयास हैं। इस प्रकार शैली की दृष्टि से भी हमें यहाँ विशिष्टता परिलक्षित होती है। आशा, वासना और लज्जा जैसी मनोवृत्तियों को चित्र तुल्य साकार रूप देना 'कामायनी' काव्य की ही विशेषता है।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रसाद जी ने 'कामायनी' में मानव जीवन के संभावित विकास को दिखाया है और उसका आनंदमय जीवन किस रूप में सम्पन्न हो सकता है, इसका भी निरूपण किया है। उद्देश्य की महानता की दृष्टि से इसकी तुलना तुलसी के 'मानस' से की जा सकती है। 'मानस' की तरह 'कामायनी' का उद्देश्य भी मानवतावादी और कल्याणकारी हैं। बौद्धिकता और भौतिकता के अतिरेक से पीड़ित और विविध प्रकार के संघर्षों में टूटे हुए मानव को चरम शांति का मार्ग बताना ही यहाँ कवि का उद्देश्य है। प्रसाद जी ने बताया है कि आज के इस संघर्षमय जीवन में बौद्धिकता को श्रद्धा से संयमित करके ही अखण्ड आनंद की उपलब्धि और विश्व शांति की स्थापना हो सकती है। आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया के बीच सामंजस्य स्थापित करना और इस तरह मानव-मानव के बीच की दूरी को मिटाकर पूर्ण मानवता की प्रतिष्ठा करना ही कवि का चरम लक्ष्य है।

आज मानवता बौद्धिकता और विज्ञान के सहारे भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी है, परन्तु इस उन्नति के क्रम में उसके हार्दिक गुणों का निरंतर ह्रास होता गया हैं। ऐसे संतप्त विश्व-

मानव को प्रसाद ने एक महान आशाजनक संदेश दिया है और वह है श्रद्धा या आध्यात्मिक आस्था का संदेश[38,39]

कामायनी'आधुनिक हिन्दी साहित्य का अमर महाकाव्य है, जिसमें आधुनिक युग की विशेषताओं और प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है और जो अनेक दृष्टियों से अपने युग के पूर्ववर्ती समस्त भारतीय महाकाव्यों से भिन्न एक निराले स्थान का अधिकारी है। छायावादी काव्यधारा के अंतर्गत जो काव्य लिखे गए, उन सभी में प्रसाद का 'कामायनी' अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा जी ने लिखा है-''प्रसाद जी की कामायनी महाकाव्यों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ती है, क्योंकि वह ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ में मानव विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण भावना की प्रेरणा और समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है।"[2] इस प्रकार प्रसाद जी ने 'कामायनी' में स्थूल पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं के भीतर निहित सूक्ष्म और चिरंतन भाव सत्यों की खोज करके उन्हें शाश्वत जीवन मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है और उन्हें ही 'आत्मा की अनुभूति' कहा है।"[3] प्रसाद का यह महाकाव्य पूर्ववर्ती सभी महाकाव्यों से भिन्न भूमिका पर प्रतिष्ठित है क्योंकि इसमें स्थूल घटनाओं और पात्रों की नहीं, अपितु सूक्ष्म मनोवृत्तियों और भावनाओं के विकास क्रम की कथा कही गई है।

कथा क्रम की दृष्टि से कामायनी की कथा का आधार पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। शतपथ ब्राह्मण की जलप्लावन घटना से लेकर पुराणों में बिखरी हुई सामग्री तक का प्रयोग प्रसाद ने किया है। वस्तुतः प्रसाद जी अत्यंत प्राचीन कथा के द्वारा मानव के विकास की सरणियों का निरूपण करना चाहते थे। प्रसाद ने 'कामायनी' में समस्त कथा सूत्रों को एकत्र करके आदि मानव के विकास की कथा कही है।[40,41]

कामायनी' के कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि इतनी बड़ी कथा होते हुए भी प्रसाद जी ने संक्षिप्त एवं सांकेतिक रूप में उसकी विकास सरणियों को स्पष्ट किया है। वन्य जीवन, नागर सभ्यता, यांत्रिक सभ्यता, उससे पलायन और अंत में आध्यात्मिक जीवन के चित्रण द्वारा हमें कथा के विकास की विभिन्न सरणियां प्राप्त होती हैं। इसी कारण कथा एक सुनियोनित रूप से आगे बढ़ती रहती है। कवि ने बताया कि देव-संस्कृति का विकास मानव के लिए अभिप्रेरित नहीं है, और न यह उसका लक्ष्य है। उसका लक्ष्य है समरसता के द्वारा आनंद की प्राप्ति। भावनाओं और दृष्टिकोणों का समन्वय ही समरसता है। नारी-पुरूष, हृदय-बुद्धि, सुख-दुःख, आशा-निराशा आदि सभी दृष्टिकोण से कामायनी का लक्ष्य जीवन में सामंजस्य का प्रयास है। मानव का प्रतीक मनु इस समन्वय दृष्टि से वंचित होने के कारण अनेक कष्ट भोगता है। उसके हृदय पक्ष और बुद्धिपक्ष परस्पर संघर्षरत रहते हैं और यह द्वंद्व तब तक चलता रहता है, जब तक श्रद्धा जीवन में समन्वय नहीं ला देती। प्रसाद जी की धारणा है कि मन से समरसता, सामंजस्य स्थापित करने से ब्राह्य जगत में भी संतुलन स्थापित हो जाएगा। इस संतुलन से ही व्यक्ति अपने मूल तत्व का विकास कर सकता है और यही उसका वास्तविक विकास है।

कामायनी' के कथानक द्वारा कवि ने मानवत्व की प्रतिष्ठा का भी अनुपम प्रयास किया है। मनु के मन में एकांत के कारण जिन मानसिक वृत्तियों का उदय होता हैं, उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मन के रहस्यों का उद्घाटन करता चला जाता है। 'कामायनी' मानवता के उस विकास को लेती है, जिसमें उठती-गिरती मानवता निरंतर गतिमान रहती है। मानव मन का अंत विश्लेषण करते हुए प्रसाद जी ने उसमें अनेक भावनाओं का आरोह-अवरोह दिखलाया है। मानव के जीवन में नारी का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। श्रद्धा मनु में एक नवीन भावना को जन्म देती है। उसकी इच्छा है 'मानवता विजयिनी हो'। प्रसाद जी अंत में मानवता की विजय ही घोषित करते हैं। पूर्ण मानव का चरित्रांकन उसका मुख्य विषय है।

कामायनी' के कथानक की अन्य मुख्य विशेषता यह है कि इसकी कथा में ऐतिहासिक सत्य का आधार तो लिया ही गया है, उसमें मानवता का मनोवैज्ञानिक इतिहास भी उद्घाटित किया गया है। मनु-श्रद्धा, इड़ा संबंधी प्राचीन कहानियों में जो रूपक तत्व निहित है, उसी के सहारे कामायनी में प्रस्तुत कथा के आवरण में मानव के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विकास की कथा कही गई है और यह रूपक योजना प्रसाद जी की अपनी कल्पना की उपज और उनकी मौलिक देन है। नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-''प्रसाद ने मानव वृत्तियों का निरूपण करने वाले अपने काव्य में दार्शनिकता का आभास अवश्य दिया है पर वह दार्शनिकता काव्य का अंग बनकर आई है और उसकी प्रकृति भावना भूमि पर ही अधिष्ठित है। वह काव्य के वस्तु वर्णन और भावात्मक स्वरूप को किसी प्रकार ठेस नहीं पहुँचाती।"[4] इस प्रकार 'कामायनी' में रूपकत्व संबंधी एक ऐसी विशेषता आ गई है, जो भारतीय या पाश्चात्य किसी भी रूपक कथा में देखने को नहीं मिलती है। 'कामायनी' के कथानक की विशिष्टता पर विचार करते हुए कुछ अन्य तत्वों पर भी हम ध्यान दे तो ज्ञात होता है कि कथासूत्र में क्रम स्थापित करने के लिए प्रसाद ने कल्पना का भी आश्रय लिया है। किन्तु श्रद्धा के संदेश, मनु के आंतरिक द्वंद्व आदि के द्वारा उन्होंने सत्य का प्रतिपादन किया है। कथा का आधार भारतीय दर्शन है।

'कामायनी' की कथा के अतिरिक्त इसके चरित्र भी प्रसाद जी ने प्राचीन ग्रंथों से ग्रहण किए हैं। मनु, श्रद्धा, इड़ा का नाम अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। भारतीय विद्वानों ने महाकाव्य में नायक के चरित्र का धीरोदात्त गुण समन्वित होना आवश्यक माना गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि उसे उन नैतिक सामाजिक और धार्मिक आदर्शों का प्रतीक होना चाहिए, जिन्हें तत्कालीन समाज में मान्यता प्राप्त थी। आधुनिक युग में चरित्रों की मान्यता में भी परिवर्तन हो गया है। आज यह माना जाता है कि चरित्रों को यथार्थ में मानव का चित्र होना चाहिए, आदर्शवादी नहीं। नायक के चरित्र-चित्रण की चली आती हुई परम्परा में प्रायः आदर्श और महानता का जो ग्रहण हुआ है, उसके स्थान पर मनु की चरित्र सृष्टि में प्रसाद ने यथार्थ को अधिक ग्रहण किया है। मनु एक साधारण मानव है, जो जीवन के समस्त संघर्षों को झेलता हुआ अंत में आनंद तक पहुँच जाता है। वह वासना, ईर्ष्या की स्वाभाविक दुर्बलताओं से ग्रसित रहता है, किन्तु आगे बढ़ने की

उसकी आकांक्षा नहीं मरती। 'कामायनी' के नायक मनु में धीरोदात्त नायक के लक्षण न होने पर भी काव्योचित ह्रास के क्षेत्र में वह एक नितांत, नवीन कल्पना है। कवि ने उसे मानव गुणों और मानवीय दुर्बलताओं से निर्मित किया है। प्राचीन शास्त्रों में महत् चरित्र की ऐसी कोई कल्पना नहीं थी। इस नवीन कल्पना का श्रेय प्रसाद का अत्यंत यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रकट करता है और यह आज के युग के अनुरूप ही है - यही मनु का चरित्र चित्रण संबंधी वैशिष्ट्य है।

इसके साथ ही प्रसाद जी ने श्रद्धा और इड़ा के जो चरित्र प्रस्तुत किए वे यथार्थवादी धरातल पर होते हुए भी मानव जीवन की उच्च सुरूचियों और उच्च भावनाओं के स्वरूप के प्रतीक हैं। यह भी एक महान प्रयास है और यह तत्व महाकाव्य परम्परा को नया आयाम देता है। इसी प्रकार इड़ा भी एक बुद्धिवादी नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुए भी मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं। वह निराश मनु को आश्रय देती है। अंतिम समय तक वह मनु को प्रेरित करती है। इड़ा का अंतिम स्वरूव विनम्र हो गया है। वास्तव में बुद्धिमयी होते हुए भी वह अमानवीय, असहिष्णु तथा निर्मम नहीं है। बुद्धि रूप में वह एक शक्ति है, जिसका मनु उचित प्रयोग नहीं कर सकें। इस प्रकार 'कामायनी' के पात्र केवल ऐतिहासिक अथवा पौराणिक बनकर नहीं रह जाते, वे युगों पूर्व के होकर भी नवीनतम परिस्थितियों में चलते दिखाई देते हैं। इतिहास के अतीत में नवीनता का सृजन एक कुशल कलाकार ही कर सकता है और यही 'कामायनी' का चरित्रगत वैशिष्ट्य है।

शैली की दृष्टि से 'कामायनी' हिन्दी में अपने ढंग का निराला महाकाव्य है। उसमें शैली की वह गरिमा, भव्यता और उदात्तता पूर्ण रूप में विद्यमान है, जिसके बिना कोई काव्य 'महाकाव्य' पद का अधिकारी नहीं हो सकता। 'कामायनी' में शैली के विविध तत्वों और पक्षों तथा अभिव्यक्ति के विविध स्वरूपों की पूर्णता है और उन सबके सामंजस्य से ही उसमें शैलीगत और उदात्तता की प्रतिष्ठा हुई हैं। यहाँ हमें भावनाओं की सत्यता, व्यापकता और गहनता मिलती हैं।[39,40]

कामायनी' में अनुभूति की सूक्ष्मता और जटिलता की अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यंजना के सभी कौशलों के उपयोग किए गये हैं। हमें इस महाकाव्य में लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता एवं चित्रात्मकता, सुसंगठित अलंकार विधान सुंदर भाषा और सरल शब्द चयन आदि गुण प्राप्त होते हैं। 'कामायनी' का शिल्प किसी परम्परागत पद्धति का अनुसरण नहीं करता। कवि ने अपनी उदात्त कल्पना, प्रांजल अभिव्यक्ति से उसकी संपूर्ण योजना का निर्वाह किया है। काव्य में गीतिमयता का ग्रहण हमें अधिक मिलता है। माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा भावों की लहर उठाती चलती है।

कामायनी' में नाटकीय शैली को ग्रहण किया गया है। मनु और श्रद्धा के मन में उठने वाले भाव और विचार मूर्तिमान होकर संवाद रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इसके साथ ही पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन भी कथानक को गतिमान करते हैं। 'कामायनी' की नाटकीयता उसके सौंदर्यवर्धन में सहायक हुई है। कामायनी की स्वच्छंदता अनुपम है।

प्राचीन समय में वस्तु वर्णन महाकाव्य का आवश्यक महत्वपूर्ण अंग था। वर्णनात्मक शैली पर महाकाव्य रचे जाते थे। प्रसाद ने इस बाह्य वस्तु वर्णन को अंतर्मुखी कर दिया है। मानवीय भावनाओं के प्रकाशन में उन्होंने संपूर्ण अवधान केन्द्रित कर दिया। सुख-दुःख, आशा निराशा के अतिरिक्त मन में उठने वाले सभी विचारों का सम्यक प्रकाशन हुआ है। 'कामायनी' अपने मनोवैज्ञानिक निरूपण के कारण अधिक भावात्मक तथा अंतर्मुखी हो गई। वस्तु का स्वरूप न चित्रित करके उसका मानव पर पड़ने वाला प्रभाव चित्रित किया गया हैं। हम कह सकते हैं कि प्रसाद की शैली वर्णन, वर्णन-प्रधान या विषय-प्रधान बहुत कम है, विश्लेषण प्रधान और विषयी प्रधान अधिक है।

भाव अभिव्यंजना की सरसता गीतिकाव्य में मिलती है। 'कामायनी' में यह गीतितत्व प्रमुखता से पाया जाता है। वर्णन प्रधान महाकाव्य में इसका अभाव देखा जाता है। प्रसाद ने अपने भावों के अनुरूप ही इस शैली को अपनाया है। गीतात्मक शैली द्वारा महाकाव्य का यह निर्माण कवि का मौलिक प्रयास हैं। इस प्रकार शैली की दृष्टि से भी हमें यहाँ विशिष्टता परिलक्षित होती है। आशा, वासना और लज्जा जैसी मनोवृत्तियों को चित्र तुल्य साकार रूप देना 'कामायनी' काव्य की ही विशेषता है।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रसाद जी ने 'कामायनी' में मानव जीवन के संभावित विकास को दिखाया है और उसका आनंदमय जीवन किस रूप में सम्पन्न हो सकता है, इसका भी निरूपण किया है। उद्देश्य की महानता की दृष्टि से इसकी तुलना तुलसी के 'मानस' से की जा सकती है। 'मानस' की तरह 'कामायनी' का उद्देश्य भी मानवतावादी और कल्याणकारी हैं। बौद्धिकता और भौतिकता के अतिरेक से पीड़ित और विविध प्रकार के संघर्षों में टूटे हुए मानव को चरम शांति का मार्ग बताना ही यहाँ कवि का उद्देश्य है। प्रसाद जी ने बताया है कि आज के इस संघर्षमय जीवन में बौद्धिकता को श्रद्धा से संयमित करके ही अखण्ड आनंद की उपलब्धि और विश्व शांति की स्थापना हो सकती है। आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया के बीच सामंजस्य स्थापित करना और इस तरह मानव-मानव के बीच की दूरी को मिटाकर पूर्ण मानवता की प्रतिष्ठा करना ही कवि का चरम लक्ष्य है।

आज मानवता बौद्धिकता और विज्ञान के सहारे भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी है, परन्तु इस उन्नति के क्रम में उसके हार्दिक गुणों का निरंतर ह्रास होता गया हैं। ऐसे संतप्त विश्व-मानव को प्रसाद ने एक महान आशाजनक संदेश दिया है और वह है श्रद्धा या आध्यात्मिक आस्था का संदेश

"तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन!

चिर-विषाद विलीन मन की,

इस व्यथा के तिमिर वन की,

मैं उषा सी ज्योति रेखा, कुसुम विकसित प्रातः रे मन!

जहाँ मरू-ज्वाला धधकती, चातकी कन को तरसती,

उन्हीं जीवन घाटियों की, मैं सरस बरसात रे मन!"

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि महाकाव्य के तत्वों में से प्रत्येक में वैशिष्ट्य के समावेश से प्रसाद रचित 'कामायनी' महाकाव्य परम्परा में एक नवीन मोड़, नया धरातल तथा मानदण्ड प्रस्तुत करती है। इस महाकाव्य में नवीन प्रयोग किए गए, जो आगे आने वाले समय में भी नया मार्ग प्रशस्त करेंगे। प्रसाद जी ने कामायनी में संसार की परिवर्तनशीलता का उल्लेख करते हुए जीवन की क्षण-भंगुरता की ओर भी संकेत किया है।[41]

निष्कर्ष

सभ्यता विकास के क्रम में मनुष्य प्रकृति से विलग होता गया। आहार संग्रही युग में मानव ने पत्थर के हथियार और आग का आविष्कार किया। कृषि-युग में खेती और पशुपालन के आधार पर मनुष्यता का विकास हुआ। इसी युग में आरम्भिक बड़े नगरों का निर्माण और व्यापार का विस्तार होने लगा। मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया। विकास की इस यात्रा में मनुष्य के लिए प्रकृति 'अन्य' होती गयी। अब वह प्राकृतिक नहीं सामाजिक प्राणी हो गया। आधुनिक युग में 17वीं से 19वीं शताब्दी के बीच हुए औद्योगिक विकास और तज्जन्य पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था ने मानव और प्रकृति के इस विलगाव को और गहन कर दिया। सभ्यता-विकास और विलगाव की यह परिघटना किसी एक दिन या युग विशेष की नहीं बल्कि सदियों-सहस्राब्दियों का योगफल है। सभ्यता-निर्माण की प्रक्रिया मनुष्य की अस्तित्वगत आवश्यकताओं से प्रेरित रही है। मनुष्य ने अपनी जैविक-अस्तित्वगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी जिजीविषा से सभ्यता-निर्माण किया। लेकिन इस उपक्रम में स्वार्थ और शक्ति की प्रधानता होती गयी। प्रकृति से विलगाव के बाद सभ्यता के जटिल स्तरों पर मनुष्य स्वात्म से भी विलग होता गया। कामायनी में सारस्वत-सभ्यता के नियामक मनु का कथन है-

"...क्या सब साधन स्ववश हो चुके?" नहीं अभी मैं रिक्त रहा-
देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानस-देश यहाँ।"

यहाँ 'सभ्यता-विकास' के क्रम में मनुष्य के विलगावग्रस्त मानस की ही पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। "मानवीय अस्तित्व को इसने एकाकी और अकिंचन बना दिया। एक तरफ़ निरंतर सभ्यता की महान प्रगति और विलक्षण उपलब्धियां जारी रहीं, दूसरी ओर मनुष्य हीन होता गया। उसका अंतःकरण संकुचित और विडंबनाओं का कोष बन गया। उसका अस्तित्व पराश्रित, निरर्थक, बेगाना हो गया। प्रकृति से विलग हुए मनुष्य को पूंजीवाद ने पहले समाज से फिर स्वयं से भी विलग कर दिया।"

कामायनी रचते समय प्रसाद के समक्ष युगों का सभ्यता-सत्य तो था ही, तत्कालीन विश्व-व्यवस्था के विषमताग्रस्त चित्र भी थे। पूँजीवादी पद्धति का सभ्यता-विकास साम्राज्यवाद में परिणत हुआ। इस सभ्यता के केन्द्र में प्रकृति और मनुष्य का दोहन व हिंसा है। "प्रसाद जी की आँखों के सामने पूँजीवाद की निर्माणात्मक कार्यावली तो थी ही, उसके साथ ही उसकी विनाशशील प्रवृत्तियों का जीता जागता नज़ारा, प्रथम महायुद्ध और उसके उपरान्त नयी अन्तरराष्ट्रीय परिस्थित थी।" इससे उपजी विषमता और शोषण का दृश्य श्रद्धा के कथनों में परिलक्षित हुआ है-

"विश्व विपुल-आतंक-त्रस्त है अपने ताप विषम-से,
फैल रही है घनी नीलिमा अंतर्दाह परम- से।...
जगती-तल का सारा क्रंदन यह विषमयी विषमता,
चुभने वाला अंतरंग छल अति दारुण निर्ममता ...
यह विराग संबंध हृदय का कैसी यह मानवता
प्राणी को प्राणी के प्रति बस बची रही निर्ममता
जीवन का संतोष अन्य का रोदन बन हँसता क्यों?
एक-एक विश्राम प्रगति को परिकर सा कसता क्यों?"

श्रद्धा के ये कथन मनु द्वारा की जा रही जीव-हिंसा के रूपक से तत्कालीन विश्व की अराजक दशा की काव्याभिव्यक्ति हैं। बीसवीं सदी के उस दौर में प्रथम विश्वयुद्ध घट चुका था और अति-राष्ट्रवाद की परिणति द्वितीय विश्वयुद्ध में होने वाली थी। "प्रसादजी के सम्मुख अगोचर रूप में वास्तिवक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय, सामाजिक-राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन क्षेत्र में लोभ-लालच, अहंकार, मुनाफ़ा, शोषण, अत्याचार, दमन और लूट-खसोट का विभ्राट खड़ा हुआ है, और उसके कारण आपस में एक-दूसरे के लिए हिकारत, घृणा, बदले की भावना, आतंक, भय, मिथ्या का आश्रय, दमन और रक्तपात के विशाल दृश्य दिखायी दे रहे हैं। उनके सम्बन्ध में श्रद्धा की क्षोभपूर्ण संवेदनात्मक जिज्ञासा उपर्युक्त वाक्यों में प्रकट हुई है।"

प्रसाद ने कामायनी में विश्व की विषमताग्रस्त-अराजक दशा का कारण मानव की अतिसंग्रही वृत्ति, उपभोगवाद और अतिस्पर्धा को माना है। उन्होंने इन्हीं प्रवृत्तियों की आलोचना और प्रतिकार किया। क्योंकि मानवीय-प्रवृत्तियों का समुच्चय ही सभ्यता के रूप में संघनित होता है। इसलिए सभ्यता में परिवर्तन के लिए उसकी घटक वृत्तियों में रूपान्तरण आवश्यक है। शोषण पर टिकी सभ्यता समाज में श्रम, समता, स्वतन्त्रता और व्यक्ति सम्बन्धों में प्रेम का हनन करती है। कामायनी में मनु का चरित्र सभ्यता के इन्हीं लक्षणों का प्रतिरूप है। समाज, प्रकृति व व्यक्ति-सम्बन्धों में विलगावग्रस्त और अतिशय उपभोग के आकांक्षी मनु के कथन हैं-

"तुच्छ नहीं है अपना सुख भी श्रद्धे वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है।"

"तुम कहती हो विश्व एक लय है, मैं उसमें
लीन हो चलूँ? किन्तु धरा है क्या सुख इसमें।"

मनु जैसा विभक्त-विलग चरित्र सामाजिक व व्यक्तिगत सम्बन्धों में आत्मग्रस्त व्यवहार करता है। वह व्यक्ति-सम्बन्धों में श्रद्धा-परित्याग करता है और समाज सम्बन्धों में सारस्वत-सभ्यता के सर्वाधिकारवादी नियामक की भाँति अतिचारी व्यवहार करता है। "मनु प्रसाद जी द्वारा सृजित चरित्र है। इस चरित्र के निर्माण का कच्चा माल बाह्य जीवन से उन्होंने प्राप्त किया था। उनका स्वयं का जीवन भी इस व्यापक बाह्य जीवन का ही एक अंश था, उनकी 'अंतःवृत्तियों' तथा 'प्रवृत्ति-मंडल' की छाया मनु के चरित्र पर पड़ी होगी। पर वह सारतः पूंजीवादी-सामंती सभ्यता का व्यापक प्रारूप है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि यह सभ्यता इसी तरह के मनुष्य ढालती है। आत्मग्रस्त, आत्ममुग्ध ऐसे ही मनुष्यों की बहुसंख्या इस व्यवस्था को चलाती है, गति देती है और उसकी

दीर्घजीविता को बनाए रखती है। यदि मनुष्य में मनु के विपरीत गुण अर्थात् विषयपरकता, वस्तुनिष्ठता, तार्किकता आदि व्यापक रूप से शिक्षा-व्यवस्था, जनसंचार, सामाजिक संस्कार, परिवर्तनकारी प्रचार आदि के ज़रिए विकसित होकर व्यापक हो जाए तो न सामंतवादी सामाजिक ढांचा बचेगा न पूंजीवादी आर्थिक-राजनीतिक प्रणाली...।" मानव सभ्यता कोई अमूर्त चीज़ नहीं है, यह अपनी इकाई 'व्यक्तियों' का ही योगफल है। अतः 'मनु-समस्या' इस सभ्यता की समस्या है। मुक्तिबोध 'मनु-समस्या' को सभ्यता-संकट का प्रमुख कारण मानते हैं, "मनु-समस्या इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि उसके प्रतिबिंब हमें समाज में सर्वत्र दिखाई देते हैं।"

मनु की आत्मग्रस्त प्रवृत्तियों के रेखांकन व रूपान्तरण की कोशिश कामायनी में आद्यन्त विद्यमान है। उपभोगवादी और आत्मकेन्द्रित देव-सभ्यता का परिणाम प्रलय हुआ। मनु ने 'चिन्ता' सर्ग में देव सभ्यता के पतन का कारण इन्हीं प्रवृत्तियों को मानते हुए कहा है, "अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।" आगे 'कर्म' सर्ग में भी मनु के भीतर इन्हीं देव-प्रवृत्तियों के उभार को श्रद्धा ने शमित करना चाहा है। श्रद्धा, मनु को प्रकृति, समाज व व्यक्ति-सम्बन्धों में तदाकार होने का मार्ग दिखाती है, जिससे व्यक्ति का आत्मविस्तार हो सकता है-

"...अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा,
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
औरों को हँसता देखो मनु—हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ!"

श्रद्धा मनु के आत्मविकास और नवीन जीवन-क्षेत्रों के अन्वेषण की मानवीय जिज्ञासा का संकुचन नहीं चाहती। श्रद्धा सभ्यता-निर्माण में लगी है, मनु उससे संलग्न नहीं हैं। अपनी आत्ममुग्धता में मनु, श्रद्धा के प्रयासों की आत्मकेंद्रित आलोचना करते हुए पलायन कर जाते हैं। आगे सारस्वत-नगर में भी मनु सभ्यता-निर्माता नहीं, मात्र असंपृक्त 'सभ्यता-नियामक' हैं। सभ्यता निर्माता तो प्रजा है। मनु आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति से संचालित सर्वाधिकारवादी अतिचारी शासक ही हो पाते हैं। यह स्थिति सभ्यता के समतामूलक विकास के विरुद्ध है। "जीवन निर्माण का स्वप्न मनु का स्वप्न नहीं है।" इड़ा और सारस्वत-प्रजा सभ्यता-निर्माण में बाधक शक्तियों के प्रतीक मनु का प्रतिरोध करती है। इड़ा के स्वर में सर्वाधिकारवाद का प्रत्याख्यान है-

"किंतु नियामक नियम न माने,
तो फिर सब कुछ नष्ट हुआ निश्चय जाने।"...
"मनु, सब शासन स्वत्त्व तुम्हारा सतत निबाहें,
तुष्टि, चेतना का क्षण अपना अन्य न चाहें
आह प्रजापति यह न हुआ है, कभी न होगा,
निर्वाधित अधिकार आज तक किसने भोगा?"

"इड़ा एक चरित्र के साथ-साथ प्रतीक भी है– आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता के विज्ञानमय बौद्धिक स्वरूप का। प्रसाद मानव की विज्ञान-यात्रा का निषेध नहीं कर रहे, पर यह उनकी भविष्य-दृष्टि थी कि मात्र वर्ग-वैषम्य सामाजिक-विडंबना ही नहीं, उपभोक्तावाद और यांत्रिक-सभ्यता द्वारा उत्पादन के विस्तार से नष्ट होती पृथ्वी के प्रति संवेदनशीलता को भी उन्होंने स्वर दिया। हम भोगवाद कहें या उपभोक्तावाद, यांत्रिकी के विस्तार, उत्पादन के स्वरूप (समाजवादी हो या पूंजीवादी), पृथ्वी का क्षरण, पृथ्वी के परिमंडल का क्षरण अब जिस चरम स्थिति पर पहुंच चुका है, वह आगामी समयों में सर्वोपरि विचारणीय विषय है।"

संघर्ष' सर्ग में आत्मघाती मूल्य-आधारों पर निर्मित सारस्वत सभ्यता का ध्वंस होता है। 'इड़ा' सर्ग में 'काम का अभिशाप' सभ्यता के इन्हीं विसंगत आधारों की त्रासद परिणति की पूर्वकल्पना है। भारतीय वाङ्मय में शाप एक काव्यरूढ़ि है। किसी साहित्यिक रचना में शाप के द्वारा रचनाकार 'कारण-परिणाम' न्याय से किन्हीं वस्तुस्थितिओं की परिणति के विषय में पूर्वकथन प्रस्तुत करता है। यदि रचनाकार अपनी विश्वस्थिति के यथार्थ ज्ञान व अनुभूतियों से संपृक्त हो तो, इस पूर्वकथन में सामयिक विश्वबोध अभिव्यक्त हो सकता है। 'काम' के अभिशाप में नर-नारी सम्बंधों, समाज और राज्य की विद्रूप स्थितियों के कारक व उनके भयावह परिणाम अंकित हैं। यह मनु द्वारा पोषित पतनशील मूल्यों पर आधारित सभ्यता के आत्मध्वंसक फलन की ज्ञान-संवेदनात्मकता व्याख्या है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के मनोविज्ञान और अन्तर्विश्व से भी है। "'काम का शाप' वस्तुतः शाप कम सभ्यता का यथार्थ अधिक है। यह मानव सभ्यता का वह यथार्थ है, जो 20वीं सदी में जटिलतर होते गए मानव-मन और जीवन का सारांश लिए हुए है। ...काम का शाप कवि की ऐसी उद्भावना है, जो उसकी युग दृष्टि और संवेदना के प्रसारात्मक रूप की गवाही देती है। इस शाप का कथ्य और इस कथ्य का विस्तार जीवन-यथार्थ के जटिलतम विस्तारों के प्रति कवि की काव्यात्मक प्रतिक्रिया है।"

प्रसाद कृत सभ्यता-समीक्षा का सघनतम रूप काम के अभिशाप में अभिव्यक्त है। यह न सिर्फ़ सभ्यता के मात्र एक चरण 'पूँजीवाद' की, बल्कि मनुष्य के दीर्घ साभ्यतिक इतिहास की भी आलोचना है। इसका मूल आधार व उद्देश्य मानव-प्रवृत्तियों की आलोचना और परिष्कार है। "प्रसाद की इस सभ्यता-समीक्षा का रूप मुख्यतः मनोवैज्ञानिक है, मगर यह उन आधारों से अनिवार्य रूप से संबद्ध है, जिन पर सभ्यताओं की प्रगति व निर्माण अवलंबित होता है। तकनीक, विज्ञान, श्रम, पूंजी, उत्पादन प्रक्रिया, वितरण, अतिरिक्त-मूल्य, निवेश, उपभोग आदि वे तत्व हैं, जो मानव-विकास के हर दौर में किसी-न-किसी रूप में पाए जाते हैं। वर्तमान पूंजीवादी-सभ्यता में विकसित होकर इन तत्वों ने विराट रूप धारण कर लिया है। सदियों की विकास-परंपरा में इन सभी तत्त्वों का मनुष्य की अंतःप्रेरणा व आंतरिक जीवन से जो संबंध रहा है, उसने ही मानव-मनोविज्ञान का निर्माण किया है। अब पूंजीवाद के इस चरम दौर में यह मानव-मनोविज्ञान का निर्धारक तत्त्व है। काम के शाप में मानव-प्रगति से उत्पन्न द्वंद्वों का मानव-मनोविज्ञान से संबंध दिखाकर प्रसाद ने इसे बदलने की ज़रूरत और इस परिवर्तन की संभावना का चित्र खींचा है, ...यह चित्र हमारा अपना ही युग है। इसी कारण प्रसाद की सभ्यता-समीक्षा और उसमें निहत मनोवैज्ञानिक तत्त्व उनके तीव्र युग-बोध का परिणाम हैं।"

सभ्यता-समस्या के अनुरूप ही प्रसाद का निदान और समाधान है। सभ्यता में समग्र परिवर्तन के लिए सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था और इसकी इकाई 'व्यक्ति' में भी मूलगामी रूपान्तरण आवश्यक है। पिछली दो शताब्दियों की सामाजिक-राजनीतिक सरणियों में सबसे प्रखर व प्रबल; 'मार्क्सवाद' की यह मान्यता रही कि, समाज परिवर्तन के द्वारा व्यक्ति परिवर्तन स्वतः घटित हो जाएगा और सभ्यता रूपान्तरित हो जाएगी। बदलती वैश्विक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी चिन्तन-परम्परा का विकास हुआ। नवीन अध्ययनों में 'उत्तर-मार्क्सवाद' से यह पुष्ट हुआ है कि, "समाज की इकाई व्यक्ति है और व्यक्ति को बदले बगैर समाज को नहीं बदला जा सकता है। इसके विपरीत पारंपरिक मार्क्सवादियों का मानना था कि समाज वर्गों के द्वारा बनता है, इसलिए सिर्फ वर्गीय अंतर्विरोधों की पहचान के द्वारा समाज को ज़रूरी तौर पर परिवर्तित किया जा सकेगा। प्रत्यक्ष रूप में भूमिका व्यक्ति की बजाय वर्ग की होगी। मार्क्यूज़ पारंपरिक मार्क्सवाद की इस समझ से इत्तेफाक नहीं रखते थे। उनका मानना था कि व्यक्तियों को रूपांतरित कर ही समाज को रूपांतरित किया जा सकता है। समाज स्वयं में किसी एक दिशा में अग्रसर नहीं होता। आलोचनात्मक विवेक द्वारा ही समाज के सामूहिक विवेक को निर्मित किया जा सकता है।"

सारांश यह कि रूपान्तरण की जटिल घटना व्यक्ति में घटती है, इन्हीं व्यक्तियों के समूह के आत्मविस्तार द्वारा रूपान्तरित समाज निर्मित होता है। मुक्तिबोध ने शास्त्रीय-मार्क्सवाद की अवधारणाओं के आलोक में कामायनी की सभ्यता-समीक्षा पर पुनर्विचार किया है। किन्तु सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के सन्दर्भ में यह पुनर्विचार यान्त्रिक हो गया है। कामायनी को रचना के अंतर्निहित तर्क यानी सभ्यता-समीक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार से काटकर, मात्र ऐतिहासिक-भौतिकवाद के खाँचे में परखा गया है। अकारण ही नहीं, मुक्तिबोध के अन्तिम निष्कर्षों में प्रसाद प्रदत्त समाधान रहस्यवादी, पलायनवादी और प्रतिगामी सिद्ध होता है। जबकि प्रसाद "इतिहास और मनोविज्ञान की लंबी यात्रा करते ही इसलिए हैं कि 'मरणासन्न पूंजीवाद' द्वारा रचे जा रहे विश्व-संजाल के समस्या-मूलक पक्षों का प्रतिवाद कर सकें, भविष्य के लिए एक दृष्टि, एक विचार, एक दर्शन, मुक्तिबोध के युग में भले ही न नज़र आया हो, पर अब अवश्य दिखेगा— जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद पर आधारित राज्य-संरचनाएं विनष्ट हो चुकी हैं, प्रेरणा और विकल्प के वैचारिक तो नहीं, पर मूर्तरूपों का संपूर्ण पराभव हो चुका है।"

उत्तर-मार्क्सवादी अध्ययनों के अनुसार; पूँजीवाद न सिर्फ़ समाज-राजनीतिक व्यवस्था बल्कि व्यक्ति-मानस को भी इस भाँति अनुकूलित करता है कि उसे अपनी चेतना का वस्तूकरण स्पष्ट नहीं दीखता। चेतना का वस्तूकरण और उससे उपजा विलगाव ही सभ्यता का सबसे बड़ा संकट है। "पूंजीवाद ने व्यक्तियों को प्रभावित करने के तरीकों को बदला है। विकसित औद्योगिक समाजों में पूंजीवाद कई स्तरों पर व्यक्ति को अपना निशाना बनाता है। न सिर्फ राजनीति बल्कि मनोविज्ञान, वस्तुओं के उत्पादन, वितरण, खपत, जनसंचार, यातायात, शिक्षा, चिकित्सा, कला एवं मनोरंजन-इन तमाम माध्यमों से पूंजीवाद व्यक्ति को रूपांतरित करता है। व्यक्तियों के इस रूपांतरण से अनुकूलित एकायामी समाज निर्मित होता है।" पूँजीवादी सभ्यता के उत्तर-मार्क्सवादी विश्लेषण से प्राप्त परिणामों और कामायनी की सभ्यता-समीक्षा के मूल निष्कर्षों में साम्य है। "इस विश्लेषण का एकमात्र अर्थ यह है कि मानवता को मनोवैज्ञानिक समाधान की भी सतत् आवश्यकता है। बल्कि यह मूलभूत आवश्यकता है। यह इतिहास का गंभीर प्रश्न है कि समाज परिवर्तन और मानव के प्रवृत्तिगत परिवर्तन को कैसे समन्वित किया जाए। विगत सदियां इस प्रश्न का सरलीकरण व इसकी उपेक्षा करती रहीं। इसी कारण मुक्तिबोध को 'कामायनी' के मनोवैज्ञानिक समाधान न सिर्फ़ अनावश्यक लग रहे हैं, बल्कि वे इसका आत्मगत आशय यह निकाल रहे हैं कि इस समाधान से कवि का मंतव्य शोषणपरक व्यवस्था को चिरंतन मानने व दुख की तीव्रता को कम कर इस तंत्र को सह्य मात्र बनाना है। इसी कारण से 'कामायनी' का समाहार जन-विरोधी है।"

कामायनी में प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक समाधान प्रसाद के प्रदीर्घ सभ्यता-चिन्तन का परिणाम है। वे यह समझते हैं कि व्यवस्था द्वारा आरोपित बदलाव कृत्रिम और अस्थायी होगा। कथा साहित्य में यथार्थ की भूमि पर सभ्यता-संकटों से जूझते हुए प्रसाद का निष्कर्ष है कि, आत्मिक समता ही स्थायी होगी। 'तितली' में समतामूलक सभ्यता-निर्माण के तरीक़े पर विचार करते हुए उनका मत है, "...विषमता तो स्पष्ट है। नियन्त्रण के द्वारा उसमें व्यावहारिक समता का विकास न होगा।"

साभ्यतिक चिन्तन के उपर्युक्त वृहत् परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह आकस्मिक नहीं है कि, युग-युग के सभ्यता-बोध से संपृक्त 'कामायनी' की सभ्यता-समीक्षा में मानव-प्रवृत्तियों के रूपान्तरण को प्रमुख महत्त्व प्राप्त है। इसे हम बाह्य व्यवस्थागत परिवर्तन पर अधिक ज़ोर देकर एकांगी, अवास्तविक और अप्रासंगिक नहीं कह सकते। इसके उलट, सभ्यता-संकट के मनोवैज्ञानिक स्वरूप की अनदेखी में चलाया गया कोई भी परिवर्तनकारी अभियान एकांगी होगा। "18-19वीं सदी के मानवतावाद व सुधारवाद की यह लोकप्रिय धारणा थी कि व्यवस्था ग़लत है, बाद में मार्क्सवाद ने इसी धारणा को एक वैज्ञानिक-आर्थिक आधार दिया तथा यह प्रतिपादित किया कि आर्थिक शोषण पर आधारित व्यवस्था का निर्मूलन कर समता पर आधारित व्यवस्था का निर्माण होने पर 'नए मनुष्य' का होना संभव है। यह पूरी संकल्पना महत्त्वपूर्ण है। परंतु इस संकल्पना में मानव-प्रवृत्तियों के रूपांतरण के अत्यंत महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रश्न को गंभीरता से अंतर्भूत किए बिना कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल पाएगा।" क्योंकि "मनुष्य अपने ऐतिहासिक-विकास, नृतत्त्वशास्त्रीय विकास, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास तथा इन सबके सम्मिलित प्रभाव से हुए मनोवैज्ञानिक-विकास का परिणाम है।"

श्रद्धा, इड़ा और 'काम' के द्वारा मनु के उन चारित्रिक लक्षणों का प्रतिकार हुआ है, जो अपने विस्तारित रूप में सभ्यता-संकट के मूल कारक हैं। 'आशा', 'कर्म' व 'ईर्ष्या' सर्गों में श्रद्धा के कथन, 'इड़ा' सर्ग में काम का अभिशाप और 'स्वप्न' व 'संघर्ष' सर्गों में अतिचारी मनु से इड़ा की बहस इस प्रतिकार का उदाहरण है। किन्तु मनु की हठधर्मिता और सघन आत्मग्रस्तता को किसी भी

तरह अपने मूल्यों में परिवर्तन स्वीकार नहीं है। 'संघर्ष' व 'निर्वेद' सर्गों में मनु की पराजय, पश्चात्तापरत जर्जर मनःस्थिति तथा व्यर्थताबोध चित्रित है। मनु की पराजय "उन मूल्यों व व्यक्तित्व के अंतर्निहित तत्वों की पराजय है, जिनसे उनका निर्माण हुआ है। यह मनु के देव-संस्कारों, पुरुषत्व बोध, सामंती-वर्चस्व, पूंजीवादी-भोग, प्रभुत्व आकांक्षा आदि उन समग्र मनोभावों, विचारों, गढ़न की समग्र-संपूर्ण पराजय है...।"

प्रसाद पराजित मनु को कर्मक्षेत्र से हटा लेते हैं। सभ्यता-निर्माण के मूल्यों से रहित मनु को कर्मक्षेत्र से हटाना, कर्म का निषेध नहीं है। क्योंकि मनु का चरित्र निर्माण-कर्म का प्रतीक नहीं है। आगे सभ्यता-विकास 'मानव' व इड़ा के सम्मिलित प्रयास से होना है। इड़ा सारस्वत-सभ्यता की निर्मात्री रही है, उसे उन कमियों की पहचान है जिनके चलते सारस्वत-सभ्यता का ध्वंस हुआ। 'मानव' उन मूल्यों से निर्मित है, जिनके अवमूल्यन से मनु को अपने जीवन की व्यर्थता का बोध हो रहा है। 'मानव' के श्रद्धा-प्रदत्त मूल्य सभ्यता-निर्माण के स्वप्न में प्रबल आस्था और कर्म की अदम्य प्रेरणा से निर्मित हैं। 'तर्कमयी' इड़ा और 'श्रद्धामय' 'मानव' को सभ्यता-प्रगति का दायित्व सौंपने का आशय यह है कि इन मूल्यों के समन्वय से हुआ सभ्यता-विकास एकायामी नहीं होगा।

पलायित और पश्चात्तापदग्ध मनु संकुचनशील हैं। विलगाव से पीड़ित व्यक्ति को आत्मग्रस्तता में किये गए अपने अतिचारों पर जब पश्चात्ताप होता है, तो उसमें आत्म-रूपान्तरण की आकांक्षा कम और व्यक्तित्व का संकुचन अधिक होता है। "मनु का पश्चाताप इसी कारण परिवर्तन के संकल्प से नहीं, इस प्रतीति से उपजा है कि आत्म-रूपांतरण उसके लिए संभव नहीं तो उसे परिदृश्य से हट जाना चाहिए। अब और उत्पात नहीं। वह अपने को फोड़ कर अपने भीतर से नहीं उग सकता, पर अपनी अंतःवृत्तियों को नियंत्रित तो कर सकता है। वर्चस्व की भावना को अपने भीतर से निर्मूल करना संभव न हो तो इस वर्चस्व-भाव को सत्ता की सहायता से प्रसारणशील होने से तो रोक सकता है। सारांश यह कि आत्म-रूपांतरण संभव नहीं तो आत्म-सीमांकन तो संभव है। स्वयं को जीवन के सक्रिय क्षेत्र से विलग कर दूसरों को अवसर तो दिया जा सकता है।"

कामायनी के अन्तिम तीन सर्गों में श्रद्धा के द्वारा मनु के समक्ष समरसता का दर्शन प्रस्तुत हुआ है। इसमें विलगाव, आत्मग्रस्तता, विभक्त व्यक्तित्व और तज्जन्य व्यर्थताबोध से मुक्ति के सूत्र अनुस्यूत हैं। समरसता की शब्दावली के कारण इसका स्वरूप अवश्य रहस्यवादी है, लेकिन कुछ पारिभाषिक शब्दों के कारण यह मोक्षवादी पलायन का संदेश नहीं कहा जा सकता। इस दर्शन के बोध से मनु प्रकृति, समाज और व्यक्ति-सम्बन्धों में तदाकार होते हैं। मनु को अपनी अस्तित्वगत परिस्थितियों का अभिज्ञान होता है और उनकी 'विस्मृति-आकांक्षा' मिट जाती है, वे स्वयं को 'प्रकृति से चिर-मिलित' अनुभव करते हैं। समरस अवस्था में उनका कथन है-

"सब की सेवा न परायी वह अपनी सुख-संसृति है,
अपना ही अणु अणु कण-कण द्वयता ही तो विस्मृति है।"

समरसता के इस दर्शन के बारे में मुक्तिबोध का कहना है, "प्रसाद जी का एक कृत्रिम रहस्यवाद है, उसकी भावना कृत्रिम है। इसीलिए कामायनी के अन्तिम सर्ग 'आनन्द' की भावना भी कृत्रिम हो गयी है। क्योंकि प्रसादजी का रहस्यवाद पलायनवाद है।" प्रसाद ने समरसता के दर्शन का प्रतिपादन 'स्वप्न-चित्रात्मक' ढंग से यानी फ़ैण्टेसी के रूप में किया है। यह काव्य रचना की वही प्रविधि है जिसकी विशद मीमांसा मुक्तिबोध ने स्वयं की है। उक्त सन्दर्भ में मुक्तिबोध द्वारा कामायनी की समरसता को पलायन कहने का कारण यह है कि, "अपनी कामायनी-विषयक पुस्तक में जिस फंतासी का मुक्तिबोध ने लंबा रचना-प्रक्रियाई विवेचन किया है उस 'फंतासी' की शैल्पिक अभिव्यंजना को मुक्तिबोध इस सर्ग में नहीं समझ सके हैं।" साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति और अनुक्रिया अयथार्थवादी लगने वाली पद्धतियों से भी हो सकती है। फ़ैण्टेसी, प्रतीककथा और जादुई यथार्थवाद ऐसी ही पद्धतियों के उदाहरण हैं। अतः साहित्य में रहस्यवाद तथा अमूर्तन का अनिवार्य मतलब यथार्थ से पलायन नहीं है। इनमें यथार्थ से बद्धमूल अभावों की भी अभिव्यक्ति हो सकती है, "विचार की दुनिया में अब यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अध्यात्म, रहस्यवाद, अमूर्तन आदि को उनके सतह पर दिखते अर्थ के आधार पर ही नहीं, उनके पाठ के विखंडन तथा उनमें निहित वस्तुगत सत्य के आधार पर व्याख्यायित किया जाना चाहिए, 'कामायनी' का रहस्यवाद जीवन से पलायन नहीं है, जीवन-समस्याओं के ठोस ज्ञान का यह आत्मगत रूप और पूर्व-रूप है। 'कामायनी' का एक निश्चित प्रयोजन है। उसके आख़िरी तीन सर्गों में व्यक्त कथ्य को रहस्यवाद, अमूर्तन, हिमालयीन-पलायन कहकर खांचों में बद्ध कर छोड़ा नहीं जा सकता। उनके वास्तविक मंतव्यों, निहितार्थों तथा अमूर्तन में प्रच्छन्न मूर्तन के आधार को तलाशना आवश्यक है।" श्रद्धा के कथनों से मनु का हिमालय आरोहण, मानवीय-प्रवृत्तियों का आरोहण है। मनुष्य के मनोवैज्ञानिक-विकास के द्वारा उसके वैयक्तिक-रूपान्तरण का यह चित्र वर्तमान साभ्यतिक परिस्थितियों में भी प्रासंगिक है। जयशंकर प्रसाद द्वारा कामायनी में चित्रित "हिमालय-आरोहण व समरसता का स्थूल शाब्दिक अर्थ न लेकर 'कामायनी' के संपूर्ण काव्य के संदर्भ में उसका अर्थग्रहण करना आवश्यक है। उन्होंने मानवीय प्रवृत्तियों के रूपांतरण तथा प्रकृति से सामरस्यपूर्ण मानव सभ्यता का संदेश देना चाहा है, वे उस क्रांतिकारी-पथ तक पहुंचे जो सभ्यता, समाज और राजनीति की इकाई मानव व उसके उस बुनियादी संबंध जिस पर समाज का गठन होता है और वह प्रकृति जिसका वह अंश है, के सामंजस्य की सत्ता व अहंता से मुक्त जीवन की पुनर्रचना करने की प्रेरणा देने वाला पथ है।"

श्रद्धा के कथन सदी के संकट को सम्बोधित हैं। प्रसाद ने श्रद्धा के चरित्र के द्वारा सभ्यता के विघटनकारी मूल्यों का खण्डन करके सांस्कृतिक परिवर्तन की रूपरेखा प्रस्तुत की है। जो प्रसाद-युग की अपेक्षा वर्तमान में किसी भी समाज-राजनीतिक परिवर्तन की पूर्वशर्त के रूप में अधिक अर्थवान हो गयी है। "श्रद्धा इस सभ्यता की हिंसक होड़ व पूंजीवादी विस्तार के बीच खो गई मानवता का अंतःस्वर है, वह हिमालय की जिन ऊंचाइयों का वर्णन प्रस्तुत करती है, वह मात्र किसी शैव-दर्शन का काव्य भाष्य नहीं, प्रकृति

की महत्ता, विराटता व सर्वोपरिता के उस अटल-चिरंतन सत्य का विवरण भी है, जिसे पूंजीवादी-सभ्यता ने क्षतिग्रस्त कर दिया है। वह सभ्यता के इस उपभोग-केंद्रित पूंजीवादी रूप का प्रतिकार है। मनुष्य कहीं खो गया है, उसके सारे संदर्भ विकृत हो चुके हैं। प्रकृति पर उसने विजय नहीं प्राप्त की है, उसे विनष्ट किया है उस प्रकृति को, जिसका वह अंश है, अर्थात् उसने स्वयं को विनष्ट किया है। 20 वीं सदी के आरंभ में विज्ञान के पूंजीवादी व साम्राज्यवादी दुरुपयोग की पश्चिमी सभ्यता की प्रवृत्ति और उसकी चपेट में आते एशिया का दृश्य प्रसाद के प्रबुद्ध संवेदनशील अंतर के समक्ष उसी तरह भाव-रूप में स्पष्ट था, जिस प्रकार इस स्थिति के विवरणों को विश्लेषित करनेवाले 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था' के लेखक लेनिन के समक्ष तथ्य रूप में।"

आधुनिक सभ्यता में प्रकृति से मनुष्य के विलगाव की विडंबना थोरो, रस्किन और रूसो जैसे पाश्चात्य विचारकों की चिंता का प्रमुख केंद्र रही है। ये विचारक सभ्यता-विकास की यात्रा में हो रहे प्रकृति-विघटन के प्रति सचेत थे। भारतीय परिप्रेक्ष्य में गांधी ने भी पर्यावरणीय संकट के प्रश्न को उठाया। प्रसाद बीसवीं सदी में सभ्यता-विकास और उसके प्रकृति-विनाशी आयामों के प्रति सचेत थे। कामायनी का दर्शन प्रकृति के साहचर्य में सभ्यता-विकास की प्रस्तावना करता है। प्रसाद मनुष्य की अस्तित्वगत आवश्यकताओं और सभ्यता-विकास की अनिवार्यता को समझते हैं। प्राकृति-साहचर्य का उनका दर्शन प्रतिगामी नहीं है। इसके मायने यह हैं कि, प्रकृति-संवेदना से युक्त मनुष्य सभ्यता के प्रकृति-विध्वंसक विकास को धीमा कर सकता है। प्रकृति के भीतर ही मनुष्य का भी अस्तित्व है। अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य को प्रकृति की रक्षा करनी है। प्रसाद द्वारा प्रस्तुत 'सभ्यता-विकल्प' वर्तमान पर्यावरणीय संकट के सन्दर्भ में प्रासंगिक 'धारणीय या सतत् विकास' की अवधारणा के अनुरूप है। मुक्तिबोध विकास और उत्पादन के पूँजीवादी प्रारूप को सभ्यता के अगले चरणों की पूर्वशर्त मानते हैं, इसीलिए कामायनी में प्रस्तुत सभ्यता-विकल्प के विषय में उनका कहना है कि, "निश्चय ही, इसका व्यावहारिक कार्यान्वयगत गर्भितार्थ प्रतिक्रियावादी है। नवीन औद्योगिक विकास तथा सामन्ती शोषण से सर्वथा मुक्ति के तत्त्व इसमें नहीं हैं। वह भारत को अविकसित सामाजिक दशा के खूंटे से बाँध रखना चाहता है।"[31] इसी मान्यता के फलस्वरूप मुक्तिबोध के समक्ष यह स्पष्ट नहीं हो सका कि, "गांधी या प्रसाद किन्हीं सामंतयुगीन, सभ्यता रहित प्राकृत-जीवन का मनोविलास नहीं कर रहे। उनकी चिंताएं वास्तविक भौतिक यथार्थ पर आधारित थीं। पृथ्वी ग्रह एक है। अब विकास और उत्पादन का प्रश्न मात्र पूंजीवाद से समाजवादी पद्धति में बदले जाने की आवश्यकता तक सीमित नहीं रह गया है।" "अतः मूल प्रश्न विकास या प्रगति के नियमन का भी है। यह संभव नहीं कि मनुष्य विकास को रोक दे। पर यह ज़रूर संभव है कि विकास की इस प्रक्रिया में प्रकृति का दोहन, शोषण व ध्वंस अल्पतम हो। यह तभी संभव है जब भोगवाद पर रोक लगे...।"

पूँजीवादी पद्धति के विकास की परिणति साम्राज्यवाद में हुई। औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में लगभग समाप्त हो गया। किन्तु यह विकास आर्थिक साम्राज्यवाद के रूप में अभी भी मनुष्य व प्रकृति के लिए संकट बना हुआ है। साम्राज्यवाद के ही प्रभाव में भूमंडलीकरण जैसी व्यापक साभ्यतिक गतिविधि नवउपनिवेशवाद में रूपायित हो गयी है। उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद के उपकरणों से 'स्वतन्त्रता की पैकेजिंग' व चेतना के वस्तूकरण द्वारा इस साम्राज्यवाद ने प्रकृति तथा मनुष्य दोनों को अपने मुनाफ़े के लिए बंधक बना लिया है। इसने हर शय को दुह्य संसाधन में बदल दिया है। "इस साम्राज्यवादी विकास मॉडल ने मनुष्य जाति को कुदरत से अलग-थलग कर दिया है, मानवीय मन को मानवीय तन से अलग कर दिया है और मानवीय चेतना को उसकी ऐतिहासिक अनुभवी चेतना से अलग कर दिया है। आज मनुष्य अपनी जन्मदात्री कुदरत से इतनी दूर जा चुका है कि वह कुदरती नियमों में जीने की जगह अपनी कल्पना में जीते हुए कुदरत को अपने अनुरूप ढालना चाहता है। यही उसकी त्रासदी है। इस अंतराल ने मानवीय मन और मानवीय तन में इतनी दूरी पैदा कर दी है कि वह हकीकत में जीने की जगह निरन्तर कल्पना में जी रहा है। साम्राज्यवादी चकाचौंध और उपभोक्तावाद के प्रचार ने उसकी दृष्टि को इस हद तक चुंधिया दिया है.... ।"

मार्क्सवादी ज्ञान-परम्परा में भी साम्यवाद की पूर्वशर्त के रूप में पूँजीवादी विकास की अनिवार्यता प्रश्नांकित होने लगी है। सवाल है कि, "पूंजीवाद कभी आता ही नहीं तो क्या हुआ होता? तब क्या मानवता ने वह सब हासिल करने के कुछ कम नृशंस रास्ते नहीं ढूंढ़ लिए होते जिसे मार्क्स मानवता की सबसे अनमोल चीजें मानते हैं। यानी भौतिक समृद्धि. रचनात्मक मानव शक्तियों की पूरी संपदा, आत्मनिर्णय की क्षमता, विश्वव्यापी दूरसंचार और आवागमन. इंसानी आजादी, भव्य संस्कृति, वगैरह-वगैरह, इतिहास पूंजीवाद नहीं कुछ और होता तो क्या राफेल और शेक्सपीयर जैसे जीनियस पैदा नहीं होते? याद रहे कि प्राचीन ग्रीस, फारस, मिस्र, चीन, भारत, मेसोपोटामिया और अन्य जगहों पर कला और विज्ञान किस कदर फले फूले थे। सो पूंजीवादी आधुनिकता क्या वाकई जरूरी थी? आधुनिक विज्ञान और मानवीय आजादी को क्या हम आदिवासी समाजों की आध्यात्मिक उपलब्धियों से ज्यादा अनमोल मान सकते हैं? क्या हम लोकतंत्र की तुलना हिटलर के महाविनाश से कर सकते हैं?

सवाल महज अकादमिक महत्त्व का नहीं है। मान लीजिए कि हममें से कुछ लोग परमाणविक या पर्यावरण के महाविनाश से बच सके और उस शून्य से सभ्यता का निर्माण फिर से करने का भारी काम शुरू करें। हम जानते होंगे कि यह महाविनाश क्यों हुआ था तो क्या बुद्धिमानी नहीं होगी कि हम निर्माण का यह काम इस बार समाजवादी तरीके से करें?"

प्रसाद ने आत्मघाती मूल्यों की नींव पर खड़ी सभ्यता के ध्वंस के पश्चात जिस नयी सभ्यता के विकास की संकल्पना की है, उसके मूल्याधार प्रकृति-संरक्षण और समाजहित की चिंता से संपृक्त हैं। कामायनी "पूंजीवादी-संस्कृति के विरुद्ध एक गहरा सांस्कृतिक प्रतिकार है। यह न गांधीवादी है, न मार्क्सवादी। इसका लक्ष्य न प्रकृति की ओर प्रत्यावर्त्तन है, न सभ्यता व विकास का नकार। यह न प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रेरित प्रसंग है। न आनंदवाद की

परिकल्पना। यह न भारतीय दार्शनिक प्रणालियों का पुनर्कथन है, न आदर्शवादी, आध्यात्मिक जगत-व्याख्या, यह अपने मूल रूप में अपने संपूर्ण रचनात्मक ढांचे में मानवीय-प्रवृत्तियों के परिष्कार व पुनर्निर्माण का एक वृहत 'टेक्स्ट' है।"

इस तरह *कामायनी* में सभ्यता-समीक्षा का स्वरूप स्पष्ट है। कामायनी की सभ्यता-समीक्षा का मूल आधार मनोवैज्ञानिक है। इसलिए इसमें सभ्यता-समस्या का निदान व समाधान भी मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रस्तुत हुआ है। कामायनी में सभ्यता-संकट का हल सभ्यता-रूपान्तरण के द्वारा हुआ है। सभ्यता में रूपान्तरण समाज की इकाई 'व्यक्ति' की प्रवृत्तियों में रूपान्तरण के द्वारा घटित होता है। रूपान्तरण का यह स्वरूप किसी कृत्रिम और आरोपित व्यवस्थागत परिवर्तन से अधिक स्थाई होता है। *कामायनी* में जगह-जगह उपस्थित रहस्यवाद यथार्थ से सम्बद्ध है। यह ब्रह्माण्ड और प्रकृति की विराटता के प्रति जिज्ञासा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका उद्देश्य मनुष्य के अस्तित्व और प्रकृति से उसके अनिवार्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में सभ्यता के संकटों को सम्बोधित करना है। जयशंकर प्रसाद ने सभ्यता-विकास को प्रकृति-संवेदना से समन्वित करने की आवयश्कता रेखांकित की है। आज मानवता के समक्ष विकास की यात्रा में प्रकृति के अतिशय दोहन से होने वाले आत्मविध्वंसक परिणाम स्पष्ट हैं। कामायनी में इस संकट के संज्ञान से ही प्रकृति-साहचर्य का दर्शन चित्रित है। *कामायनी* के समाधान वर्तमान सभ्यता विमर्शों के उन सन्दर्भों में प्रासंगिक हैं जिनमें ये प्रकृति, समाज और व्यक्ति-सम्बन्धों की चिन्ताओं को सम्बोधित हैं। हमें *कामायनी* की सभ्यता-समीक्षा और विकल्प में वे सूत्र प्राप्त हो सकते हैं, जिनके द्वारा सभ्यता के एकायामी निर्माण के दुष्परिणामों से बचा जा सकता है। इन निर्माणसूत्रों से एक समग्र सभ्यता के विकास का प्रयास संसाधित हो सकता है।[42]

संदर्भ

1. महाकाव्य के रूप में प्रसाद की कामायनी का वैशिष्ट्य
2. कामायनी में शैव दर्शन
3. हरीश अग्रवाल, जयशंकर प्रसाद एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा, (उत्तर प्रदेश), पृ. 8
4. गंगाप्रसाद पाण्डेय, महादेवी वर्मा, कामायनी-एक परिचय, भूमिका से, पृ. 8
5. जयशंकर प्रसाद, कामायनी की भूमिका से, पृ. 4
6. नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहितय, पृ. 71-72
7. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ. 229
8. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.67
9. आलोक श्रीवास्तव: *स्वप्नलोक में आज जागरण: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-1*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 106
10. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.63
11. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.38-39
12. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.80
13. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.41
14. वही, पृ. 74
15. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ.497
16. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.56
17. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.42
18. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ.48
19. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.72
20. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ.223-224
21. वही, पृ. 374
22. वही, पृ. 528
23. अच्युतानंद मिश्र: *बाज़ार के अरण्य में: उत्तर मार्क्सवादी चिंतन पर केंद्रित*, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), 2018, पृ.119
24. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 444
25. अच्युतानंद मिश्र: *बाज़ार के अरण्य में: उत्तर मार्क्सवादी चिंतन पर केंद्रित*, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), 2018, पृ.119
26. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 454

27. जयशंकर प्रसाद: *तितली*, ज्योति प्रकाशन, संस्करण: 2017, पृ. 104
28. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 451-452
29. वही, पृ. 497
30. वही, पृ. 461
31. वही, पृ. 469
32. जयशंकर प्रसाद: *कामायनी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2017, पृ.112
33. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ. 145
34. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु': तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमें! (कामायनी के कवि आलोचकों का सन्दर्भ), *बहुवचन* (अंक-47), अक्टूबर-दिसम्बर, 2015, पृ. 134
35. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 206
36. वही, पृ. 415
37. वही, पृ. 154-155
38. गजानन माधव मुक्तिबोध: *कामायनी: एक पुनर्विचार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2015, पृ. 93
39. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 224
40. वही, पृ. 454-455
41. गुरबचन सिंह: *प्रकृति: मनुष्य और राज्य: साम्यवादी दर्शन की पुनर्व्याख्या* (पंजाबी से अनुवाद: तरसेम गुजराल), आधार प्रकाशन, 2012, पृ.127
42. टेरी इगलटन: *क्यों सही थे मार्क्स* (अँगरेज़ी से अनुवाद: चैतन्य कृष्ण) ; आकार बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 58
43. आलोक श्रीवास्तव: *नील लोहित ज्वाल जीवन की: महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य यात्रा-2*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ. 406

IJTSRD International Journal of Trend in Scientific Research and Development ISSN: 2456-6470